वीर संवत् २४९२, माघ शुक्ल ७, गुरुवार
दि. २८-१-१९६६, गाथा १३ से १५ प्रवचन नं.- ११

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला', उसकी दूसरी ढाल। १३वीं गाथा हुई। कुशास्त्र ऐसा आया न अन्तिम ? कुमति अथवा कपिलादि रचित श्रुत को अभ्यास '**सो है कुबोध बहु देन त्रास**' - ऐसा। कुशास्त्रों का ज्ञान, चार गति के दुःख देनेवाला है। उनमें अनेक प्रकार के तत्त्वों की विरुद्ध बात की होती है और उसे स्वयं माने तो उस कुशास्त्र की श्रद्धा से चार गतियों में भटकना होता है। अन्तिम शब्द कहा... '**जहाँ एक तत्त्व की भूल होती है, वहाँ सातों ही तत्त्वों की भूल होती ही है - ऐसा समझना।**' यह बात बहुत बार आ गयी है। समझ में आया ?

जैसे कि मुनिपना आत्मा को तीन कषाय के अभावरूप संवरदशा हो, वहाँ उन्हें विकल्प बहुत ही मन्द (होता है)। आहार-पानी आदि लेने के विकल्प का आस्रव इतना ही होता है, उन्हें वस्त्र-पात्र आदि लेने का विकल्प नहीं होता। जिन्होंने वस्त्र-पात्रसहित के रागवाला मुनिपना मनाया है, उन्हें नौ तत्त्वों की - सात ही तत्त्वों की भूल हुई; क्योंकि उसके (मुनिदशा के) प्रमाण मे जो उग्र संवर चाहिए, उस संवर का उन्हें भान नहीं रहा और उग्र संवर हो, वहाँ आस्रव उत्पन्न ही मन्द होता हो; वस्त्र-पात्र का विकल्प नहीं होता; निर्दोष आहार - जल ग्रहण करने का, अट्ठाईस मूलगुण पालन का ही विकल्प होता है। अतः उन्हें आस्रवतत्त्व की भूल भी है। संवर-निर्जरातत्त्व की उग्रता हो, वहाँ इतना आस्रव होता है और तीव्र आस्रव होने पर भी, यहाँ संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारणरूप साधुपना मनाया, यह संवर-निर्जरा की भी भूल है और इस मन्द संवर-निर्जरा से मोक्ष मनाया, वह मोक्षतत्त्व की भी भूल है। आत्मा की भी भूल है। आत्मा की शक्ति की व्यक्तता, छठवें गुणस्थान में बहुत उग्रता चाहिए, उतनी शक्ति की व्यक्तता नहीं

मानी तो उसे जीवतत्त्व की भी भूल है। उस आस्रव में तीव्र बन्ध पड़ा - ऐसा बन्धतत्त्व, उन्हें - (मुनि को) नहीं हो सकता; और अजीव का संयोग, जिसे मुनिपने की उग्र संवरदशा हो, उसे अजीव का संयोग-वस्त्र-पात्र का संयोग नहीं होता। यह अजीवतत्त्व की भूल भी है। सातों ही तत्त्वों की (भूल है)। एक तत्त्व की भूल में सातों ही तत्त्व की भूल है। समझ में आया ? यह बहुत बार कहा जा चूका है।

ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर को भी जो नहीं माने और माने तो विपरीतरूप से माने तो एक तत्त्व को भूलने पर समस्त तत्त्वों की भूल होती है। समझ में आया ? सर्वज्ञ को एक समय में दर्शन और दूसरे समय में ज्ञान (होता है) - ऐसा मानने पर खण्ड-खण्ड ज्ञान हो गया। उसे अखण्ड वीतरागदशा में पूर्ण उपयोग का ख्याल नहीं रहा तो उसके कारणरूप उग्र पुरुषार्थ चाहिए, उस पुरुषार्थ से एकरूप उपयोग होना चाहिए, उस काल के पुरुषार्थ का भी ज्ञान नहीं रहा। जिसे ऐसी दशा होवे, उसे आहार-पानी की इच्छा नहीं हो सकती; उसे आहार-पानी का संयोग ही नहीं होता। ऐसी दशा - वीतराग परमानन्द भावमोक्ष हो गया, उसे आहार-पानी की इच्छा नहीं है और इच्छा के बिना वह आहार-पानी का संयोग नहीं होता। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है! इसलिए सच्चे शास्त्र क्या हैं, मिथ्या क्या है - इसकी खोज करनी चाहिए और विचार करके निर्णय करना चाहिए।

गृहीत मिथ्याचारित्र का लक्षण

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध विध देहदाह;
आतम अनात्मके ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।१४।।

अन्वयार्थ :- (जो) (जो) (ख्याति) प्रसिद्धि (लाभ) तथा (पूजादि) मान्यता और आदर-सन्मान आदिकी (चाह धरि) इच्छा करके (देहदाह) शरीर को कष्ट देनेवाली (आतम अनात्म के) आत्मा और परवस्तुओं के (ज्ञानहीन) भेदज्ञान से रहित (तन) शरीर को (छीन) क्षीण (करनी) करनेवाली (विविध विध) अनेकप्रकार की (जे जे करनी) जो-जो क्रियाए हैं, वे सब (मिथ्याचारित्र) मिथ्याचारित्र हैं।

भावार्थ :- शरीर और आत्मा का भेदविज्ञान न होने से जो यश, धन-सम्पत्ति, आदर-सत्कार आदि की इच्छा से मानादि कषाय के वशीभूत होकर शरीर को क्षीण करनेवाली अनेक प्रकार की क्रियाएँ करता है, उसे 'गृहीत मिथ्याचारित्र' कहते हैं।।१४।।

अब, '**गृहीत मिथ्याचारित्र का स्वरूप।**' ऐसी मिथ्याश्रद्धा और मिथ्याज्ञानसहित जिसके भले ही राग की मन्दता आदि की क्रिया हो... समझ में आया ? वह शरीर को जीर्ण करनेवाली है, आत्मा की शान्ति प्रगट करनेवाली नहीं, विकार को क्षीण करनेवाली नहीं, परन्तु देह को क्षीण करनेवाली क्रिया - ऐसी कठोर होवे, पंचाग्नि आदि, वह कीलों में सोते है न ? क्या कहलाता है वह ? बाण... बाण। बाणशय्या में सोवे, पंचाग्नि - पाँच-पाँच छाणा अग्नि में पड़े, पानी में यहाँ तक डूबकर ऐसे हाथ ऊँचा करके रहे... है न इसमें। दृष्टान्त है, इसमें। दृष्टान्त इसमें हैं। यह मुल है और इसमें है। इसमें है। है न ? दृष्टान्त है। पानी में है न ? चौदहवीं में दृष्टान्त डाला है, देखो ! पानी में खड़ा... ठण्डा पानी होवे और खड़ा रहे। वह तो देह को कष्ट है, उसमें आत्मा का धर्म नहीं है। आत्मा के भान बिना ऐसी क्रियाएँ करे, वे सब शरीर को कष्ट देनेवाली अथवा शरीर को जीर्ण करनेवाली हैं। आत्मा का विचार जीर्ण हो या नष्ट हो - ऐसा कुछ वहाँ नहीं है। यह ! १४वीं गाथा में कहते हैं, देखो !

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध विध देहदाह;
आतम अनात्मके ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।१४।।

देखो ! आत्मा और अनात्म-भाषा रखी है, हाँ ! आत्मा और शरीर - ऐसी नहीं रखी; फिर भले ही अर्थ में शरीर डाले परन्तु सब (लिया है)। आत्मा, शरीर की क्रिया स्वतन्त्र है - उसका भान नहीं है; पुण्य-पाप के परिणाम बन्ध का कारण है, अनात्मा है - उसका पता नहीं है और आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध स्वरूप है, उसकी भी जिसे दृष्टि नहीं है। आत्मा और... है न ?

'**जो...**' कोई '**प्रसिद्ध...**' आत्मा का भान नहीं है। आत्मा ज्ञानानन्द में आनन्द है - ऐसी दृष्टि, रुचि, अनुभव नहीं है - ऐसे अज्ञानी मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान सहित, गृहीत और अगृहीत दोनो। यहाँ गृहीत की बात हैा। प्रसिद्धि-अपनी प्रसिद्धि के लिए क्रियाएँ करते हैं,

क्योंकि आत्म प्रसिद्धि का पताा नहीं है। समझ में आया ? आत्मप्रसिद्धि... देखो ! यहाँ प्रसिद्धि शब्द रखा है न ? ख्याति, आत्मख्याति आता है न ? टीका।

आत्म ज्ञायक चिदानन्द अखण्ड आनन्दमय है - ऐसी दृष्टि किये बिना आत्मा की प्रसिद्धि, ख्याति धर्म नहीं हो सकता। समझ में आया ? आत्मा एक समय में अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध है। वह पुण्य-पाप, दया, दान आदि के विकल्प-राग से रहित है। ऐसी आत्मा की प्रतीति और भान बिना उसे आत्मा की प्रसिद्धि की, ख्याति-प्रसिद्धि होती नहीं। हैं ? (जो) आत्मप्रसिद्धि के लिए नहीं करता, वह पर के लिए - बाह्य प्रसिद्धि के लिए करता है। दुनिया में प्रसिद्ध होऊँ, कुछ लाभ मिले, फायदा मिले, शिष्य हों, प्रतिष्ठा हो, कीर्ति हो - ऐसे हेतु से करनी (करता है।) मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याज्ञान, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की मान्यतासहित जो ऐसी क्रियाएँ करते हैं, वे सब बाहर के किसी लाभ के लिए करते हैं, अन्दर के आत्मा के लाभ के लिए नहीं। कहो, ठीक है ? आत्मा जाना नहीं, कि आत्मा कौन है ? आत्मा राग, पुण्य-पाप के राग से रहित है - ऐसी दृष्टि के बिना अज्ञानी को आत्मा का लाभ होता ही नहीं।

अज्ञानी मिथ्याश्रद्धा और मिथ्याज्ञान में बाहर के लाभ के लिए सब करता है। पूजा, मान्यता, बाहर मे प्रसिद्धि होना, दूसरे लोग माने अथवा '**आदर इत्यादि की इच्छा करके ((देहदाह) शरीर को पीड़ा करनेवाली...**' भाषा तो ऐसी ही कही जाती है न ! वरना शरीर को पीड़ा कुछ नहीं है, परन्तु शरीर जीर्ण होता है न ? ऐसा। यह पंचाग्नि करे, तप करे, यह महीने-महीने के उपवास करे-देखो न ! भान बिना जैन में भी (करते हैं)। उसे पता नहीं, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र कोन ? सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र कौन ? आत्मा और अनात्मा में सब आ गया - आस्रव, बन्ध, अजीव, पुण्य और पाप। वह अनात्मा कौन है, किस प्रकार है और आत्मा क्या है ? - इसके भान बिना अज्ञानी '**शरीर को पीड़ा करनेवाले...**' समझ में आया ?

देखो ! '**आत्मा-अनात्म के ज्ञान हीन...**' सिद्धान्त यहाँ है। जिसे गृहीत मिथ्यादर्शन, गृहीत मिथ्याज्ञान और गृहीत मिथ्याचारित्र है या जिसे अगृहीत मिथ्यादर्शन, अगृहीत मिथ्यज्ञान और अगृहीत मिथ्याचारित्र है, उसे आत्मा-अनात्मा का भान नहीं है। आत्मा और अनात्मा अर्थात् परवस्तु के भेदज्ञान से रहित - 'यह शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, मैंने

आहार-पानी छोड़े, यह अजीव की क्रिया मैंने की, मैंने आहार नहीं लिया तो नहीं लिया गया, लिया तो ले सके' - ऐसे जड़ पदार्थ का उसे भान नहीं है कि जड़ की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। अनात्मा का भान नहीं है, उसे पुण्यपरिणाम का भान नहीं है। इस पर के त्याग में ज़रा राग मन्द होता है, वह तो शुभ है; वह कहीं धर्म नहीं है। धर्म तो आत्मा के शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव की दृष्टि में - भान में स्थिर होना, उसे धर्म कहते हैं। अज्ञानी को उस धर्म का पता नहीं है, भले ही जैन सम्प्रदाय में पड़े हों ! बाहर में सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का भी पता नहीं होता, वे सब ऐसी करनी करके हैरान होते हैं - ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया ?

वर्षीतप करते हैं न ? देखो न ! खेंच-खेंचकर करते हैं। भान नहीं होता देव का, गुरु का, शास्त्र का, नहीं होता आत्मा-अनात्मा का भान। जीव कौन ? पुण्य कौन ? आस्रव कौन ? बन्ध कौन ? और अजीव कौन ? बाहर की क्रिया में देह का जीर्ण (क्षीण) किया करते हैं। '**शरीर को क्षीण करनेवाली...**' ये सब क्रियायें हैं। ये क्रियायें विकार का नाश करनेवाली नहीं है। आत्मा की पुष्टि करनेवाली नहीं है, वे तो शरीर को क्षीण करनेवाली हैं। शरीर जीर्ण हो जाए तो लोग ऐसा जाने कि आहा..हा.. ! क्या तपस्वी ! कैसी तपस्या की ! ओ..हो..हो.. ! एक दिन खाना और एक दिन उपवास। धूल में भी नहीं है। जहाँ आत्मा-अनात्मा का ज्ञान नहीं, स्व-पर का विवेक नहीं, मैं चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा हूँ, रागादि के परिणाम उत्पन्न हों, वह भी विकार है और शरीरादि की-आहारादि की क्रिया तो जड़ की क्रिया है। इस तरह जिन्हें आत्मा और अनात्मा का भान नहीं है, वे सब शरीर को क्षीण करते हैं। भाई !

मुमुक्षु :- आन्दोलन करते हैं न ?

उत्तर :- अज्ञान का आन्दोलन करते हैं - ऐसा यहाँ कहते हैं। आत्मा कौन ? ज्ञाता-दृष्टास्वरूप है। उसकी क्रिया में राग, विकल्प उठे, वह भी उसकी क्रिया नहीं है।

मुमुक्षु :- तपस्या करने से लाभ ?

उत्तर :- हाँ, होता है न ! इस तपस्या से तपस्या करे, उसे मिथ्यात्व का लाभ (होता है)। मिथ्यात्व का लाभ होता है। कहते हैं न ? यहाँ क्या बात चलती है ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- यह तपस्या-तपस्या, वह दूसरी बात, यह तपस्या नहीं, अज्ञानी माने वह बात नहीं। यह तो अज्ञानी माने वह नहीं।

यह तो आत्मा के आनन्द में चैतन्य का अतीन्द्रिय आनन्द का पहला सम्यग्दर्शन हुआ है - ऐसे आनन्द में स्थिर होने को तपस्या कहते हैं, उसे तपस्या कहा जाता है। यह तो सब लंघन है। आत्मा तीर्थंकर हो उन्हें नहीं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन में पहले आत्मा के आनन्द का अनुभव किया, फिर सम्यग्ज्ञान में अन्तर शुद्धि बढ़ाकर और फिर शुद्धता में आनन्द में - अतीन्द्रिय आनन्द में गुम हो गये कि जिन्हें इच्छा ही नहीं आयी, आहार नहीं आया। उसे अतीन्द्रिय आनन्द में गुम हुए को, लीन हुए को तपस्या कहा जाता है, बाकी लंघन है। समझ में आया ?

आत्मा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के भान बिन जितना कुछ करता है, वह सब संसार परिभ्रमण के खाते में है। होगा ही। अनादि का नौवें ग्रैवेयक गया, अनन्त बार जैन का साधु हुआ, पंच महाव्रतों का पालन किया; जिनदीक्षा लेकर अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया.. वह कैसी दीक्षा होगी ? हजारों रानियों का त्याग किया, राग की मन्दता थी। आत्मा, राग से भिन्न चैतन्यमूर्ति आनन्द है, उसके अनुभव की दृष्टि के बिना उन क्रियाओं में संसार फलित हुआ। जन्म-मरण मिला। मिला, जन्म-मरण मिटा नहीं। बात ऐसी है जरा, भाई !

आत्मा और अनात्मा के भान बिना... देखो न, क्या है ? शब्द है या नहीं ? यह विकल्प उठता है। आहार छोड़ूँ या रखूँ - यह भी विकल्प, राग, आस्रवतत्त्व है, वह आत्मा नहीं है। आत्मा ज्ञानानन्द तत्त्व बिन्न है। देह की क्रिया, आहार रखना-छोड़ना यह जड़ की क्रिया है, आत्मा की नहीं। ऐसे आत्मा-अनात्मा के '**भेदज्ञान से रहित शरीर को क्षीण करनेवाली...**' क्रिया है, वह तपस्या अज्ञानी की जो है वह। समझ में आया ?

एक बालतप और एक ज्ञानतप - शास्त्र में दो प्रकार के तप हैं। आत्मा के - चैतन्य के शुद्ध आनन्दकन्द के अनुभव बिना जितनी क्रियायें करे, उन सबको बालतप कहा जाता है। महीने-महीने के उपवासा करेा, बारह-बारह महीने के उपवाास करे - सब बालतप, मूर्खता से भरा तप है। उसमें आत्मा को ज़रा भी लाभ नहीं है, (परन्तु) नुकसान अनन्त अनन्त (है।) मिथ्यात्व का नुकसान है। धर्म नहीं और धर्म माने। निर्जरा नहीं होती और बन्ध होता है, उसे

निर्जरा माने। भाई ! है ?

मुमुक्षु :- भलाभोला..।

उत्तर :- भला भोला माना अर्थात् मूर्खाई का। भला-भोला कैसा यहाँ ? वीतरागमार्ग में भला-भोला क्या काम आवे ? यहाँ तो नौ तत्त्व हैं या नहीं ? तो आत्मा किसे कहना ?

मुमुक्षु :- स्थिर होने का काम है न ?

उत्तर :- परन्तु किसका तप ? किसमें स्थिर होना ? अभी चारित्र नहीं हो, दर्शन नहीं हो, ज्ञान नहीं हो, तो उसे तप कहाँ से आया ? सम्यग्दर्शन के बिना तप और चारित्र तीन काल में सच्चा नहीं होता। एकके बिना के शून्य होते हैं, रण में चिल्लाकर रोने जैसा है।

आत्मा तो ज्ञानानन्दस्वरूप हैा। अन्दर पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत का परिणाम उठे, तप का (परिणाम आवे कि) आहार छोडूँ, वह तो आस्रव-पुण्यभाव है। देहादिक की क्रिया, आहार-पानी छूटना, वह तो जड़ की क्रिया है। वह जड़ का भाव, विकारीभाव और अविकारीभाव - इनके अन्तर में भेदज्ञान और अनुभव के बिना जितनी तपादि की क्रिया की जाती हैं, वह शरीर को क्षीण करने के लिए हैं; आत्मा के लाभ के लिए नहीं।

'**भेदज्ञान से रहित शरीर को क्षीण करनेवाली (विविध...विधि)...**' देखो ! '**अनेक प्रकार की (जे जे करनी) जो-जो क्रियायें हैं, वे सब मिथ्याचारित्र कहलाती हैं।**' अज्ञानी का वह मिथ्याचारित्र है, जिसमें से संसार बढ़ जाता हैा। सूक्ष्म बात है, बापू ! उसे अभी सुनने नहीं मिला। अनादि से भटका-भटक (करता है)। यह तो अभी गृहीत मिथ्यात्व, पहले तो अगृहीत (मिथ्यात्व की) बात की है। समझ में आया कुछ ? सात तत्त्व की श्रद्धा (विपरीत श्रद्धा) की बात हो गई।

'**भावार्थ :- शरीर और आत्मा का भेदविज्ञान नहीं होने से...**' मूल पाठ में ही यह है। वहाँ पर और आत्मा-अनात्मा कहा, इसलिए अनात्मा में सब पूरी व्याख्या (आ जाती है)। आत्मा और अनात्मा अर्थात् पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, अजीवादि ऐसा। आत्मा ज्ञाननद शुद्ध जानने-देखनेवाला, वही उसकी चीज़ है और पुण्य-पाप के विकल्प उत्पन्न हों, वह तो आस्रवतत्त्व है। शुभ-अशुभभाव उत्पन्न हों - यह किया, यह छोड़ा, वह सब आस्रवतत्त्व है। जीवतत्त्व पृथक्

आस्रवतत्त्व पृथक्। कर्म, शरीर, आहार-पानी तो अजीवतत्त्व, जड़तत्त्व है। उस जड़ का ग्रहण-त्याग कर सकता हूँ - यह मान्यता अजीव की मिथ्यादृष्टि की है। जीव राग करे और राग का कर्तव्य उसका है - यह जीवतत्त्व की भूल है। राग, शुभभाव मुझे धर्म का कारण होता है - यह शुभ, आस्रवतत्त्व की भूल है। ऐसे जीव और अजीव अथवा आत्मा और अनात्मा के ज्ञान बिना, श्रद्धा-अन्तर अनुभव के बिना जितना किया जाता है, वह सब मिथ्याचारित्र कहा जाता है। कहो, समझ में आया ?

देखो ! इसमें एक दृष्टान्त दिया हैा। बिचारा, देखो न ! करनी करके सूख जाए... अभी तो ऐसा भी कहाँ है ? यह तो नौंवे ग्रैवेयक गया, तब तो इतनी चारित्र की क्रिया - इसकी मानी हुई... मानी हुई - पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार, नग्नदेह भी परन्तु यह राग की क्रिया है और शरीर की क्रिया जड़ है - ऐसा वह नही जानता। यह मेरा धर्म है, पंच महाव्रत का परिणाम, यह मेरा धर्म है - ऐसा मानता है। मूढ़ है। ह तो राग है। ज्ञानानन्द चैतन्य राग से भिन्न अखण्डानन्द प्रभु वीतरागी पिण्ड आत्मा है, उसकी अन्तर स्वभाव में दृष्टि, अनुभव बिना जो कुछ करे, वह सब उसे संसार में भटकने का (कारण) है।

'**शरीर और आत्मा का भेदज्ञान नहीं होने से...**' भावार्थ है न ? वह यश के लिए ही करता है। आत्मा की प्रसिद्धि का पता नहीं। उस प्रसिद्धि का अर्थ यश किया है। आत्मा तो ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य है। सम्यग्दर्शन होने पर धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, तब तो उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया ? भगवान अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति वीतराग समस्वभावी स्वरूप उसका है। जैसा परमात्म का - परमेश्वर अरिहन्त का प्रगट है, इसका अप्रगट पूर्ण शक्तिरूप है। पूर्णानन्द का पूर्ण तत्त्व है - ऐसा जो अन्दर में भान (हुआ), उसे आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष पुण्य-पाप के परिणाम को हेयबुद्धि से मानता है। समझ में आया ? अज्ञानी को यह पता नहीं है। आत्मा का स्वाद क्या ? पुण्य-पाप का विकल्प उत्पन्न होता है, उनका स्वाद बेस्वाद है, जहर है, इसका उसे पता नहीं है। समझ में आया ?

'**शरीर और आत्मा का भेदज्ञान नहीं हो से यश...**' बस ! बाहर की प्रसिद्धि का ही

अन्तर हेतु है; आत्मा की प्रसिद्धि का पता नहीं है। '**धन...**' अथवा तो लक्ष्मी मिलेगी। यह करे न ? ऐसी क्रिया करेंगे तो पुत्र होगा, पैसे मिलेंगे। मांगलिक करेंगे तो ऐसा होता है - यह सब मिथ्यादर्शन की क्रियाएँ हैं। यह अच्छे रूप से दौलत मिले... धन और दौलत (दो में) फिर क्या अन्तर होगा ? पैसा बहुत बढ़े-ऐसा न ?

मुमुक्षु :- जवाहरात दौलत में आवे।

उत्तर :- दौलत में आती होगी ? ऐसा मिले। गहरे-गहरे ! आत्मा का तो पता नहीं। ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप आत्मा को अनुभव में लेकर आनन्द प्रगट होता है - ऐसा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तो (है) नहीं; दौलत प्राप्त करूँ... अरे... ! दुनिया में बड़े कहलाये... तपस्वी हैं, व्रतधारी हैं, चारित्रवन्त हैं - ऐसे दूसरों से महन्तता लेने '**आदर-सत्कार इत्यादि की इच्छा से मानकषाय के वशीभूत होकर...**' अन्तर में तो भान ही पड़ा है, अन्दर आत्मा का भान नहीं है, इसलिए।

'**शरीर को क्षीण करनेवाली...**' भाई ! शरीर को क्षीण करनेवाली... आ..हा.. ! पीछे है न इसमें ? देखो न ! मूल में है। '**धरि करन विविध विधि देहदाह...**' देह को दग्ध करता है, देह को जलाता है, जीर्ण (करता है, उसमें आत्मा को क्या ? आत्मा तो पता नहीं अन्दर क्या चीज़ है ? '**छीन**' (शब्द) है न अन्दर ? '**जे जे करनी तन करन छीन।**' उस-उस करनी से तन को क्षीणता होती है, जीर्ण होता है। (ऐसी) '**अनेक प्रकार की क्रिया करता है, उसे गृहीत मिथ्याचारित्र कहते हैं।**' मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञानरहित ऐसे राग की क्रिया करे, उसे (गृहीत) मिथ्याचारित्र कहते है। समझ में आया ?

मिथ्याचारित्रके त्याग का तथा आत्महित में लगने का उपदेश

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पंथ लाग;
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत ! निज आतम सुपाग।।१५।।

अन्वयार्थ :- (ते) उस (सब) समस्त (मिथ्याचारित्र) मिथ्याचारित्र को (त्याग) छोड़कर

(अब) अब (आतम के) आत्मा के (हित) कल्याण के (पंथ) मार्ग में लाग) लग जाओ; (जगजाल) संसाररूपी जाल में (भ्रमण को) भटकना (देहु त्याग) छोड़ दो, (दौलत) है दौलतराम ! (निज आतम) अपने आत्मा में (अब) अब (सुपाग) भलीभाँति लीन हो जाओ।

भावार्थ :- आत्महितैषी जीव को निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ग्रहण करके गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा आगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का त्याग करके आत्मकल्याण के मार्ग में लगना चाहिये। श्री पण्डित दौलतरामजी अपने आत्मा को सम्बोधन करके कहते हैं कि-हे आत्मन् ! पराश्रयरूप संसार अर्थात् पुण्य-पाप में भटकना छोड़कर सावधानी से आत्मस्वरूप में लीन हो।

'**मिथ्याचारित्र के त्याग का और आत्महित में लगने का उपदेश।**' लो ! यह दूसरी ढाल का अन्तिम श्लोक है।

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पंथ लाग;
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत ! निज आतम सुपाग।।१५।।

इसमें भी उन्होंने चित्र रखे हैं, हों ! जगजाल है न सब ? यह चित्र रखा है। जन्म, भ्रमण में देव, वनस्पति, सर्प हुआ, मुर्गा हुआ, यह हुआ, ढोर हुआ, नारकी हुआ। चार गति के भव, आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना, अन्तर्दृष्टि, अनुभव बिना इसने यह सब किया, यह चार गति के भव में भटकने के लिये हैं।

'**उस समस्त मिथ्याचारित्र को छोड़कर अब आत्मा के कल्याण के मार्ग में लग जाओ...**' देखो ! यह शब्द ! स्वयं अपने को कहते हैं और दुनिया को - दोनों को कहते हैं। हे आत्मा ! आत्मा का हित - यह देहादि, वाणी की क्रिया मेरी नहीं है, शरीरादि वस्तु मेरी नहीं, उसकी दशा हो वह मेरी नहीं है; पुण्य-पाप के परिणाम / विकल्प उठता है - दया, दान व्रतादि वह भी शुभभाव है। हिंसा, झूठ, चोरी - यह पापभाव है परन्तु मेरी चीज़ नहीं। इनसे मेरी चीज़ ज्ञानानन्द शुद्ध आनन्दकन्द भिन्न है, - ऐसी श्रद्धा करके आत्मा के हित में लग जाओ। कहो, समझ में आया ?

अभी तक आत्मा का अहित करता था - ऐसा हुआ न ? अहित करता (था)। यह तो गृहीत

मिथ्यात्व की बात है। अनादि का अगृहीत मिथ्यात्व, अगृहीत ज्ञाान, अगृहीत चारित्र, वे तो अनादि केा हैं। तदुपरान्त यह कुदेव-कगुरु-कुशास्त्र मिले, उनके श्रद्धा आदि किये, तो यह गृहीत मिथ्यात्व, गृहीत ज्ञान और गृहीत (मिथ्या) चारित्र हुए। मिथ्या ! समझ में आया ? छह प्रकार का वर्णन आ गया है।

'**अब, आत्मा के (हित) कल्याण के मार्ग में लग जाओ...**' मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र - दोनों प्रकार के - गृहीत और अगृहीत को छोड़ दे - ऐसा एकसाथ कहा है। आत्मा के हित के पन्थ में लग जाओ। भगवान आत्मा शुद्ध अनाकुल शान्तरस का पिण्ड प्रभु, अनन्त अनन्त पवित्र गुण का धाम आत्मा (है)। ऐसा आत्मा की अन्तर्दृष्टि करके, अन्तर आत्मा का ज्ञान करके उसके हित के पन्थ में लग जाओ। लो ! समझ में आया ?

'**(जगजाल) संसाररूपी जाल में भटकना छोड़ दो।**' चार गति, भटकने के कारण - मिथ्यादर्शन आदि और पुण्य-पापभाव, यह पुण्य-पाप के भाव भी भटकने का कारण है। शुभभाव भी परिभ्रमण का बन्ध का कारण है। समझ में आया ? पुण्यभाव, पुण्यभाव परिभ्रमण का कारण है। पुण्य से बन्धन होता है और बन्धन से संयोग मिलते हैं, उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं है। पापभाव से प्रतिकूल बन्ध होता है और उससे प्रतिकूल संयोग मिलते हैं, इसलिए कोई लाभ (नहीं है)। ऐसा जगजाल, '**संसाररूपी जाल में...**' अर्थात् मिथ्यादर्शन, ज्ञान में और पुण्य-पाप के भाव में भटकने का त्याग करो, उसे छोड़ो। समझ में आया ?

'**हे दौलतराम** !' हे आत्मा की दौलत के राम, ऐसा। अन्दर अन्तर आत्मा में अनन्त ज्ञान और आनन्द पड़ा है, अनन्त गुण पड़े हैं। जितने गुण सिद्धों में हैं, उतने ही गुण आत्मा में यहाँ है। हे दौलतराम ! हे आत्माराम ! दौलतराम यह। कहो, समझ में आया ? उस दौलत को छोड़कर यह दौलत-ऐसा कहा न ? वह दौलत ली थी न ? लक्ष्मी की दौलत, उसे छोड़कर अब आत्म दौलत को अन्दर में देख ! यह आत्मा क्या होगा ? कौन जाने क्या पता पड़े ? यह अन्दर में पुण्य-पाप के विकल्प उत्पन्न हो, शुभाशुभ - इनसे रहित तत्त्व है, जिसमें अनन्त दौलत पड़ी है। आहा..हा..! केवलज्ञान प्रगट हो, उसका मूल आत्मा है। इस आत्मा में से केवलज्ञान प्रगट होता हैा, कहीं बाहर से नहीं होता है।

मुमुक्षु :- केवलज्ञान का घर पड़ा है।

उत्तर :- घर पड़ा है, कहा था न यह तो ? केवलज्ञान तो एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान कोई गुण नहीं है। केवलज्ञान, सिद्धदशा भी एक समय की दशा है, पर्याय है। ऐसी-ऐसी एक समय में पर्याय रहे, दूसरे समय नष्ट हो जाए; नया केवलज्ञान हो, दूसरे समय नया केवलज्ञान होता है। दूसरे समय का हुआ, तीसरे समय नष्ट होकर नया केवलज्ञान होता हैा। ऐसा अनन्त काल नया-नया केवलज्ञान हुआ करता है। ऐसे अनन्त केवलज्ञान का पिण्ड पड़ा है आत्मा। किसे पता क्या होगा यह ? समझ में आया ?

यह केवलज्ञान गुण है या पर्याय - इसक पता नहीं होता। यह केवलज्ञान की पर्याय अर्थात् हो रहा मानो। केवलज्ञान, वह पर्याय है, वह कोई गुण नहीं है। गुण तो आत्मा में त्रिकाल है। नयी अवस्था उत्पन्न होती है, वह पर्याय होती है, गुण नहीं होती। विवाद उठा न ? वे कहते हैं - सम्यग्दर्शन गुण है। बड़ा विवाद चला था। सम्यग्दर्शन तो पर्याय है। गुण प्रगट होते होंगे ? आत्मा तो अनन्त गुणों का पिण्ड त्रिकाल ध्रुव है। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द ये गुण हैं, वे तो त्रिकाल पड़े हैं, त्रिकाल ध्रुव है। अन्दर में केवलज्ञान प्रगट होता है, वह तो पर्याय है, हालत है, दशा है। समझ में आया ? ऐसी अनन्त केवलज्ञान की दशायें, उनका पिण्ड, आत्मा में ये समस्त शक्तियाँ पड़ी है। किसे पता वह आत्मा कैसा होगा ? भाई ! आत्मा कुछ करता नहीं ? जानने का क्या काम है ? क्या करता है ? मूढ़ करे। समझ में आया ? हें ?

मुमुक्षु :- काम में लग जाओ।

उत्तर :- काम में लग जाओ, अर्थात् आत्मा में लग जाओ, ऐसा। अनादि से बाहर से बाहर में ही लगा है। शुभाशुभभाव तो अनादि से किये है। समझ में आया ? बाहर के त्याग-ग्रहण की बुद्धियाँ भी अनन्त बार की; परन्तु आत्मा कौन है ? - उसका इसने एक सैकेण्ड भी ज्ञान नहीं किया। एक सैकेण्ड नहीं किया, इसलिए अब तो कहते हैं, आत्मा के हित और कल्याण के लिए लग जाओ। आहा..हा..! बाद में यह ढाल आती है न, इसलिए यह उपोद्घात किया है। अब तीसरी (ढाल में) मोक्षमार्ग आयेगा, इसलिए यहाँ 'हित' लिया है। आत्मा का हित मोक्षमार्ग है - यह कहेंगे। देखो !

'**संसाररूपी जाल में भटकना छोड़ दे। हे दौलतराम** ! (**निज आतम**)...' देखो ! '**अपने आत्मा में...**' हाँ ! भगवान का आत्मा - परमेश्वर का आत्मा अलग ! देखो ! वे भगवान, भगवान आत्मा को कोई तिरा नहीं देते। वे तो सर्वज्ञ परमेश्वर हैं, वे तो परवस्तु हैं। परमात्मा का ध्यान, विचार करना, वह भी एक शुभविकल्प है, राग है, पुण्य है। आहा..हा..! इसलिए कहते हैं कि '(**निजआतम**)...' अन्दर अपना आत्मा अनन्त... अनन्त गुणों से भरपूर भगवान, अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का रस पड़ा है। आत्मा में अतीन्द्रिय शान्ति पूर्ण पड़ी है। ऐसे आत्मा को पहिचानो और ऐसे आत्मा में... अब, निज आत्मा में अर्थात् अपने आत्मा में अब तो लगो - ऐसा कहते हैं। देखो न ? अभी तक तो किये उल्टे(भाव)। माना धर्म और थे विपरीत भाव।

'(**अब**) **अब** (**सुपाग**) **भलीभाँति लीन हो जाओ।**' लो ! सुपाग समझे न ? भगवान आत्मा अशुद्ध आन्दकन्द निर्विकल्प आनन्द है। जिसका स्वरूप पुण्य-पाप के राग से रहित है। एक-एक रजकण, देह या कर्म का जिसमें नहीं है - ऐसा अभी आत्मा है। ऐसे आत्मा का अन्तर अनुभव करो और उसमें सुपाग - विशेष स्थिर होओ, लीन होओ। कहो, इसमें समझ में आया ?

'**भावार्थ :- आत्म हितैषी जीव को निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ग्रहण करके...**' देखो ! निश्चय अर्थात् क्या ? आत्मा शुद्ध अखण्ड, पुण्य-पाप के रागरहित, दया-दान-व्रत के विकल्परहित आत्मा है। यह विकल्प उठे, वह सब राग और पुण्यास्रव है। उससे रहित शुद्ध चैतन्य पिण्ड अखण्डानन्द अनन्त गुणों का पिण्ड, उसका अनुभव निश्चय सम्यग्दर्शन (है)। उसका अनुभव, यह आत्मा आनन्दकन्द है, उसका अनुभव-इसका नाम सच्चा सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? और ज्ञान... उस आत्मा का ज्ञान। शुद्ध केवलज्ञान का कन्द हूँ - ऐसा आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान। शास्त्रज्ञान आदि परज्ञान, वह मोक्ष में कुछ काम नहीं करता। बहुत सूक्ष्म बात (है) !

निश्चय अर्थात् (सच्चा) सम्यग्दर्शन, सच्चा ज्ञान। निश्चय अर्थात् आत्मा का सच्चा ज्ञान। अन्तर आत्मा ज्ञानस्वरूप है, राग और पुण्य से रहित है - ऐसा स्वसंवेदनज्ञान और चारित्र। इस सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान के अनुभव में - स्वरूप में वीतरागपने स्थिर होना, आनन्द में स्थिर

होना, अतीन्द्रिय आनन्द में जम जाना - इसका नाम भगवान, चारित्र कहते हैं। इसका नाम भगवान, चारित्र अर्थात् सच्चा व्रत कहते हैं। समझ में आया ? यह निश्चय सम्यग्दर्शन। (निश्चयशब्द) तीनों को लागू पड़ता है। निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय चारित्र ग्रहण करके, लो ! यह पर्याय है सही न ! सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादि मोक्षमार्गः।

'**गृहीत मिथ्यादर्शन ज्ञान-चारात्रि...**' गृहीत अर्थात् जन्मने के बाद नयी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा की हो। मिथ्याज्ञान जन्म के बाद ग्रहण किया हो। अनादि का मिथ्याज्ञान किया, वह अलग (है)। यह तो जन्म लेने के बाद कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का ज्ञान किया हो, और मिथ्याचारित्र-इनका त्याग...।

'**अगृहीत मिथ्यादर्शन...**' अनादि की सात तत्त्वों की भूल। समझ में आया कुछ ? आ गयी न ? सातों तत्त्वों की भूल आ गई है। जीव को शरीर की क्रिया का करनेवाला मानना। यह पैसा मेरा, स्त्री मेरी, कुटुम्ब मेरा, यह मेरा, यह मेरा... यह मेरा मानना - यह सब मिथ्यादर्शन है, यह जीवतत्त्व की भूल है। जीव में ये चीजें नहीं है, उन्हें (अपनी) मानना वह मिथ्यादर्शन है। समझ में आया ? यह अगृहीत-अनादि का है। जन्म लेने के पश्चात् कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र में अवतार हुआ और उनने मनाया, वह गृहीत मिथ्यादर्शन, नया (हुआ)। पुराने मिथ्यात्व की पुष्टि करनेवाला (है)। समझ में आया ?

'**अगृहीत मिथ्यादर्शन...**' शरीर उत्पन्न हुआ तो मैं जन्मा, शरीर मरे तो मैं मर गया। शरीर की समस्त क्रियाएँ मैं कर सकता हूँ; मेरे कारण होती है। उनकी उपादान शक्ति से होती है - ऐसा नहीं मानता। कर्म-बन्धन होता है, वह रजकण की क्रिया से होता है। यह शरीर चलता है, वह जड़ के कारण चलता है, आत्मा के कारण नहीं। ऐसा जो नहीं मानता, वह अजीव की भूल। उसके उपादान की क्रिया मुझसे होती है - यह अजीव की भूल है। अनादि की मिथ्यादृष्टि की अजीव की भूल है। समझ में आया ?

आस्रव - पुण्य-पाप के परिणाम, शुभाशुभपरिणाम, वे दुःख के देनेवाले हैं। शुभ हो या अशुभ पराणिाम, वे दुःख के देनेवाले हैं। शुभ हो या अशुभ हो - दोनों विकार परिणाम बन्ध के कारण, दुःख के कारण है। उन्हें सुख का कारण माने, यह आस्रवतत्त्व की भूल है। शुभ-पुण्य

का फल शरीरादि अनुकूल मिलें, उसमें प्रेम करना और प्रतिकूल अशुभबन्ध के फल में द्वेष करना, यह बन्धतत्त्व की भूल है। आ गयी न सब ?

भगवान आत्मा, उसका सम्यग्ज्ञान-अन्तर में आत्मा का ज्ञान करना और आत्म का चारित्र, अन्दर संवर, निर्जरा, वीतरागभाव प्रगट करना - ऐसे ज्ञान और चारित्र को दुःखादायक मानें, कष्टदायक मानें, यह संवर, निर्जरा की भूल है। बहुत से कहते हैं न ? भाई ! चारित्र तो बालू/रेत का ग्रास है, बापा ! चारित्र तो आनन्ददायक है। अन्तर आनन्द प्रगट हो, उसे चारित्र कहते हैं। दुःखदायक होवे तो वह तो पाप है, दुःखदायक तो आर्तध्यान है। समझ में आया ? व्याख्या करते हुए कहते है न ? बापा ! चारित्र तो बालू/ रेत के ग्रास है। आहा..हा..! तू चारित्र को नहीं समझता। चारित्र तो अन्तर आनन्द की अनुभवदृष्टि में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव की वीतरागता प्रगटे, उसे चारित्र कहते है। जबकि यह कहता है - दुःखदायक है। है सुखदायक, उसे दुःखदायक माने, उसे संवरतत्त्व की भूल है।

निर्जरा की (भूल) - आत्मा के स्वभाव शुद्ध चैतन्य की शक्ति प्रगट नहीं करता; आत्मा के शुद्ध स्वभाव की परमानन्द की मूर्ति, उसकी तिजोरी नहीं खोलता, एकाग्र होकर नहीं खोलता; मात्र इच्छा और अभिलाषा के वेग में जाकर मुझे निर्जरा होती है और लाभ होता है - ऐसा माने, वह निर्जरातत्त्व की भूल है।

अनाकूलता मोक्ष का स्वभाव है। मोक्ष में अत्यन्त अनाकूलता (है)। आत्मा के आनन्द के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चाारित्र के अनुभव से जो मोक्ष होता है, (वह) अनाकुल-आनन्दमय है, उसे दुःखरूप मानना। मोक्ष में क्या किसी का करते नहीं ? मोक्ष में ऊपर लटकते हैं ? गाड़ी, वाड़ी कुछ नहीं ? - ऐसा माननेवाले मोक्षतत्त्व को नहीं समझते। शरीर होवे तो ज्ञान होता है, इन्द्रियाँ होवे तो ज्ञान होता है; शरीर, इन्द्रियों के बिना ज्ञान होता होगा ? भगवान आत्मा ! मोक्ष, अर्थात् पूर्णानन्द की प्राप्ति। ऐसी अनाकुलदशा को नहीं पहिचानता, इसलिए उसे मोक्षतत्त्व की भूल है। या तो कुछ ऐसा चाहिए, साधन चाहिए... केवली होवे, पूर्ण परमात्मा होवे तो दुनिया का कुछ कर दे या नहीं कुछ ? अनन्त वीर्य प्रगट, वे दुनिया का कोई भला-बूरा

नहीं करे। हम ऐसे साधारण (हैं) तो भी किसी का भला कर देते हैं। मूढ़ जीव मानता है। कर किसका सकता है ? पर का (भला) कौन करे ? एक छिलका बदलने की आत्मा में ताकत नहीं है। जड़ की क्रिया जड़ से होती है, उसे आत्मा (कर्ता है - ऐसा) माने (तो वह) मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। ऐसे मिथ्यादृष्टि को मोक्षतत्त्व का भी पता नहीं है। लो ! क्या मोक्ष में अकेला बैठे रहना है ? अकेला अर्थात् अनाकुल आनन्द का अनुभव, उसका नाम मोक्ष है। विकार से छूटना, अशरीरी होना और अकेले आत्मा की शुद्धता पूर्णानन्द प्रगट होता है। इस आत्मा का मोक्षमार्ग, अन्तर के मोक्षमार्ग से प्रगट होता है - इसका भान नहीं है, उसे की जितनी पढ़ाई हो, वह सब अनादि का अगृहीत मिथ्याज्ञान है; और मिथ्याचारित्र..! ऐसे अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञानसहित जितनी मन्द रागादि की क्रिया हो, वह सब मिथ्याचारित्र है। '**उनका त्याग करके...**' लो ! '**आत्मकल्याण के मार्ग में लगना चाहिए।**' समझ में आया ? '**आतम के हित -**' कहा है न ?

'**पण्डित श्री दौलतरामजी अपने आत्मा को सम्बोधन करके कहते हैं कि हे आत्मन्**! **पराश्रयरूप संसार, अर्थात् पुण्य-पाप में भटकना छोड़कर...**' स्वआश्रय कहा न ? आत्मा आत्मा कहा इसलिए। शरीराश्रित क्रिया और पुण्य-पाप के भाव की क्रिया, यह सब पराश्रित, बन्ध का कारण है। उस पराश्रयरूप '**संसार, अर्थात् पुण्य-पाप में भटकना छोड़कर सावधानी से आत्मस्वरूप में लीन हो।**' यह आत्मा के हित का मार्ग है। समझ में आया ? यह दूसरी ढाल हुई। अपने सार सब आ गया है। इसमें जो कहना है, वह सब आ गया है।

वीर संवत २४९२, माघ शुक्ल ७, शुक्रवार

दि.२८-१-१९६६, गाथा १, प्रवचन नं.-११ (४० मिनिट)

अब, तीसरी ढाल। नरेन्द्र छन्द, जोगीरासा। '**आत्महित, सच्चा सुख और दो प्रकार से मोक्षमार्ग का कथन।**' एक श्लोक में (कहेंगे)। अब, यह चार-चार (लाईनों का) आया, हाँ ! चार-चार लाईनों का बड़ा-बड़ा है। देखो, आत्मा का हित क्या है ? - उसका इसमें कथन है। वह आत्माहित कहा था न ? अन्तिम ढाल में - आत्मा के हित में लग जाओ। भगवान आत्मा को अन्तर(में) पहिचानकर, उसमें एकाकार होओ, यह आत्महित है। यह क्या कहते हैं ? यह बताते हैं, देखो ! सच्चा सुख क्या ? और दो प्रकार से मोक्षमार्ग, (ऐसे) तीन का कथन है।

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये;
आकुलता शिवमांही न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन शिव, मग सो द्विविध विचारो;
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।।१।।

बहुत अच्छी बात ! गागर में सागर भरा है। थोड़े में और सादी भाषा ! यह तो हिन्दी भाषा है। '**आत्मा का कल्याण सुख की प्राप्ति है।**' लो, आत्मा का हित अर्थात् कल्याण की प्राप्ति, सुख की प्राप्ति, अतीन्द्रिय कल्याण की प्राप्ति, वह आत्मा का हित है। कहो, दुनिया को सुख चाहिए या नहीं ? कैसा सुख ? अतीन्द्रिय एक ही सुख है। दुनिया में पुण्य-पाप में पैसा-धूल में सुख मानते हैं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। पैसे में सुख है, स्त्री में सुख है, प्रतिष्ठा में सुख है - यह माननेवाला मूढ़, मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी है। ऐसी मिथ्यादृष्टि सहित की जो कोई क्रिया करे, वह सब अज्ञान में जाती है। सुख कहाँ धूल में ? समझ में आया ? परन्तु थोड़ा-बहुत सुख होगा या नहीं ? धूल में भी सुख नहीं है। स्त्री-शरीर जड़-मिट्टी है; पैसा मिट्टी-धूल है। दाल, चावल, लड्डू, वह धूल है। पर में सुख कहाँ से आया ?

मुमुक्षु :- शक्कर मिले तो प्रसन्न हुए।

उत्तर : प्रसन्न हुए, मूढ़ है, कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को शक्कर के ढेर हो तो जड़ है। प्रसन्न किसमें होता है वह ? धर्मी को तो भीतर में आत्मा के आनन्द का ढेर पडा दिखाई देता है। शक्कर का ढेर जड़ का है। यहाँ चैतन्य का है, वह तो जड़ का है। सम्यग्दृष्टि को देवपद मिले तो भी प्रसन्न नहीं होता। देव का पद मिले तो भी प्रसन्न नहीं, और देवपद का कारण जो पुण्यभाव हो, उसमें भी सम्यग्दृष्टि प्रसन्न नहीं है। पुण्य और पुण्य के फल में प्रसन्न हो, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। उसे वीतरागमार्ग की श्रद्धा का पता नहीं है। ऐसी बात है, भाई ! आहा..हा.. !

सुख तो '**आकुलता रहित कहा जाता है...**' ऐसा कहते हैं। दुनिया का माना हुआ सुख, वह सुख नहीं है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का ढेर पड़ा है। आत्मा (में) अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का पुञ्ज भीतर पड़ा है। उसके अतीन्द्रिय आनन्द का पर्याय में प्रगट होना, इसका नाम सुख कहा जाता है। अनाकुलता के भाव को सुख कहते हैं। कहो, यह तो स्त्री, पुत्र, पैसा, पाँच-पचास लाख का ढेर (होवे तो कहते हैं) उसके समक्ष देखकर आकुलता है; धूल में भी सुख नहीं है। व्यर्थ में ही मूढ़ मिथ्यादृष्टि राजपाट, स्त्री, पुत्र, पैसे में सुख मानता है। कैसे होगा ? भाई ! क्या लेना इसमें ? भाई ! मूढ़ अज्ञानी व्यर्थ हैरान हो गया है।

मुमुक्षु :- किसलिए ?

उत्तर :- पर में सुख मानकर। धूल में भी सुख नहीं है, मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु :- पर में दुःख तो होगा न ?

उत्तर :- पर में दुःख भी नहीं है। पर में दुःख कैसा ? पर को अपना मानना, पर से मुझे लाभ (है - ऐसा) मानना - ऐसी मान्यता इसे दुःखरूप है। पर कैसा ? वह तो जड़, मिट्टी, धूल है, वह तो अजीवतत्त्व है। पैसा, लक्ष्मी अजीव धूल तत्त्व है। उसमें सुख कैसा और दुःख कैसा ? स्त्री-पुत्र अच्छे हों, पैसा-वैसा ठीक हो, पाँच-पचास हजार महीने का वेतन हो (तो कहता है) सुखी है। (यहाँ कहते हैं) मूढ़ हो, मिथ्यादृष्टि हो; तुम्हें वीतरागमार्ग का पता नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव, ऐसे लाख, करोड़, अरबों पैसे (रूपये) बाहर के हो और अनुकूलता होवे (तो भी) उसमें दुःख का निमित्त मानता है। दुःख का निमित्त, हाँ ! वह दुःख नहीं है।

आकुलता, विकल्प उत्पन्न होता है, वह दु:ख है, उसका वह निमित्त है। सम्यग्दृष्टि धर्मीजीव पर में सुख नहीं मानता। आहा..हा..! अभी मान्यता का ही पता नहीं है (कि) क्या चीज है ?

'सुख आकुलता रहित कहा जाता है।' आकुलता न हो, उसे सुख कहते हैं। वह **'आकुलता मोक्ष में नहीं है...'** ऐसा अब सिद्ध करते हैं। आत्मा का हित-कल्याण सुख की प्राप्ति है। वह सुख आकुलतारहित कहा जाता है और वह आकुलता मोक्ष में नहीं है - ऐसा कहते हैं। मोक्ष को सिद्ध करते हैं। आत्मामें से परमात्मदशा प्रकट होना, (वह मोक्ष है।) केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य, सिद्धपद, वह मोक्षदशा है। मोक्ष में आकुलता नहीं, अनाकुलता है।

'इसलिये (शिवमग) मोक्षमार्ग में लगना...''चहिये...' अर्थात् **'चाहिये।'** इसलिए मोक्ष के मार्ग में लगना चाहिए। यह मोक्ष, वह हित और अनाकुल सुख है, इसलिए उसके मार्ग में जाना चाहिए - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! वहाँ से शुरू किया है, देखा ? पहले से मोक्ष से शुरू किया। सिद्ध भगवान आत्मा और अरिहन्त परमेश्वर अनन्त आनन्द को भोगनेवाले हैं। समझ में आया कुछ ? अरिहन्त परमेश्वर को भी अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द है। भले चार अघातिकर्म शेष हों, (तो भी) अनन्त आनन्द है। महाविदेहक्षेत्र में 'सीमन्धर' भगवान विराजमान है। चार कर्म शेष है, चार कर्मों को टाला है। अनुभव करके, अन्तर अनुभव दृष्टि करके उन्हें अन्दर से अतीन्द्रिय आनन्द प्रकट हुआ है। अतीन्द्रिय आनन्द अर्थात् मोक्ष ही है, उन्हें भावमोक्ष है। सिद्ध को द्रव्यमोक्ष हो गया है, शरीर छूट गया है, वे देहमुक्त हो गये हैं। उसमें ही आनन्द है, अन्यत्र कहीं आनन्द नहीं है। **'इसलिए (शिवमग) मोक्षमार्ग में लगना चाहिए।'** लो, दूसरा सब छोड़कर मोक्ष के मार्ग में (लगना चाहिए) क्योंकि मोक्ष में अनाकुलता है। मोक्ष, वह आत्मा की शुद्धपर्याय है।

मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पन्थ।
समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।।

वीतराग भगवान परमेश्वर ने पूर्णानन्द की प्राप्ति मोक्ष, उसका मार्ग अन्तर में स्वरूप में समझाया है।

'मोक्षमार्ग में लगना चाहिए। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों की एकता, वह मोक्ष का मार्ग है।' समझ में आया ? उसकी व्याख्या नीचे करेंगे, हाँ ! आत्मा अन्तर में पूर्ण, शुद्ध आनन्द वीतरागीमूर्ति प्रभु आत्मा है। अभी, हाँ ! उसकी अन्तर में दृष्टि-ज्ञान और लीनता होना, उसका नाम (मोक्षमार्ग है)। निर्विकल्प वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान और आत्मा की वीतरागी शान्ति (प्रकट होना) उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र -मोक्ष का मार्ग, उसे भगवान कहते हैं। आहा..हा.. ! तीनों की एकता, वह शिवमार्ग है।

'उस मोक्षमार्ग को दो प्रकार से विचार करना चाहिए...' समझ में आया ? उसमें कोई शब्द है न ? **'उस मोक्षमार्ग का दो प्रकार से विचार करना कि जो (सत्यारथरूप) वास्तविक स्वरूप है, वह निश्चयमोक्षमार्ग है...'** समझ में आया ? आत्मा में शुद्ध चैतन्यमूर्ति की अन्तर निर्विकल्प अनुभव-दृष्टि (होना), उसका-आत्मा का अन्तर निर्विकल्प ज्ञान और अन्तर स्वरूप की वीतरागता - परिणति चारित्र (प्रगट होना), वह एक ही सच्चा मोक्ष का मार्ग है। देखो ! 'सत्यार्थ' पर जोर है, उसकी समझ में आयेगा, असत्यार्थ। कहो, समझ में आया ? **'वास्तविकस्वरूप है, वह निश्चयमोक्षमार्ग है।'** समझ में आया ?

इस प्रकार विचार में लेना अर्थात् इसे सत्यार्थरूप से विचारना - ऐसा कहते हैं। उसे

असत्यार्थरूप से... इसके सामने लो तो असत्यार्थ रूप से; इसे निश्चयरूप से लो तो उसे व्यवहाररूप से; इसे शुद्ध उपादानरूप से तो उसे निमित्तरूप से (विचारना)। - यह इसमें लिखा है, भाई ! यह पुरानी प्रति है न ? उसमें यह लिखा है। वास्तविक स्वरूप है, वह निश्चय है। कोष्टक में शुद्ध अथवा मुख्य। मुख्य - ऐसा लिखा है। आहा..! पहले की हिन्दी (प्रति है)। मोक्षमार्ग कहलाता है। और उस निश्चयमोक्षमार्ग का कारण व्यवहार... कोष्टक में (लिखा है), अशुद्ध, गौण अथवा उपचार। इसमें पहले हैं, हाँ ! क्या कहते हैं ? यह बड़ा विवाद हैं। उसका यह स्पष्टीकरण होता है।

भगवान आत्मा के आश्रय से निर्विकल्प अन्तर अनुभव दृष्टि, ज्ञान और शान्ति (प्रकट हो), वह निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह एक ही सच्चा मोक्षमार्ग है। समझ में आया कुछ ? उसका विचार करना। पहले उसका ज्ञान करना - ऐसा कहते हैं। '**(सत्यार्थरूप) वास्तविक-स्वरूप है, वह निश्चयमोक्षमार्ग है और (कारण)...**' ऐसा है न ?'**कारण सो व्यवहारो।**' अर्थात् कारण। कारण के अर्थ में आया कि आत्मा शुद्ध परमानन्द की अन्तर दृष्टि, ज्ञान (होना), वह शुद्ध उपादान दृष्टि हुई। वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग हुआ और उसके साथ राग (होता है), देव-गुरु-शास्त्र आदि की श्रद्धा का राग होता है, वह असत्यार्थ अथवा वह निमित्तकारण आया। यहाँ उपादानकारण आया, वहाँ वह निमित्तकारण आया। यहाँ निश्चय आया, वह व्यवहार आया। यहाँ मुख्य आया, (वह) गौण आया। यह शुद्ध आया, (वह) अशुद्ध आया। समझ में आया ? आहाहा..! यह तो हम इस शब्द में से (अर्थ करते हैं)।

'**शिवमग सो द्विविध विचारो; जो सत्यारथरूप सो निश्चय... जो सत्यारथरूप...**' ऐसा कहा है न ? सच्चा स्वरूप, ऐसा। सत्यार्थ अर्थात् सच्चा स्वरूप, वह निश्चयमोक्षमार्ग (है)। सच्चा रूप, रूप अर्थात् स्वरूप। भगवान आत्मा शरीर-वाणी की क्रिया का लक्ष्य छोड़कर, पुण्य-पाप का विकल्प राग होता है, उसकी रुचि छोड़कर, अकेले परमानन्द प्रभु आत्मा की अन्तर रुचि, ज्ञान और रमणता (होना), वह मोक्ष का मार्ग है। सच्चा, सत्य स्वरूप, निश्चय मार्ग, शुद्ध उपादान से प्रकट हुआ, उसे यथार्थ वास्तविक मोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया कुछ ?

'**और (कारण) जो...**' कारण का अर्थ निमित्त। क्योंकि यहाँ यह शुद्ध उपादान आया।

समझ में आया ? आत्मा, जो ध्रुव त्रिकाल आनन्दकन्द है, वह ध्रुव उपादान है, परन्तु उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्ध पर्याय प्रकट हुई, वह भी शुद्ध उपादान पर्याय हुई। शुद्ध उपादान और निमित्त और... उसमें कितना ज्ञान करना ? कहते हैं कि - भाई ! तूने कभी सच्चे तत्त्व का पता नहीं किया है।

वह भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव तो शुद्ध ध्रुव है। त्रिकाल अखण्ड आनन्द और शुद्ध का ही पिण्ड आत्मा है। वह ध्रुव उपादान है। उसे अन्तर में शुद्ध वर्तमान पर्याय, वह द्रव्य के आश्रय से प्रकट हुई - शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परमार्थ से वीतराग दृष्टि वीतराग ज्ञान, वीतराग चारित्र जो स्वभाव है, वह शुद्ध उपादान प्रकट हुई पर्याय है। उसके साथ वह राग - देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, नव तत्त्व की विकल्पवाली श्रद्धा, नवतत्त्व की श्रद्धा-राग, उसे निमित्तकारणरूप से; असत्यार्थ मार्ग को निमित्तरूप से, व्यवहाररूप से, उपचाररूप से मार्ग कहा गया है। समझ में आया ? इसीलिए तो 'सत्यार्थरूप' शब्द प्रयोग किया है। सच्चा, व निश्चय। दूसरे प्रकार से कहे तो मिथ्या अर्थात् वह मार्ग तो नहीं है, ऐसा (कहना है)। परन्तु उसे निमित्त नाम प्राप्त होता है, निमित्त का नाम पड़ता है। सच्चा मोक्षमार्ग तो आत्मा के अवलम्बन से हो, वह मोक्षमार्ग है, परन्तु उस काल में पूर्ण वीतरागदशा नहीं है; इस कारण भगवान द्वारा कथित नवतत्त्व की भेदवाली श्रद्धा का राग (होता है), वह विकल्प है, वह पुण्य है, उसे निमित्त कहा जाता है; उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाता है; व्यवहार से मोक्षमार्ग कहा जाता है। असत्यार्थ को व्यवहार कहना, इसका नाम उसका उपचार मार्ग है। आहा..हा..!

मुमुक्षु :- झूठे-सच्चे को साथ रखना चाहिए ?

उत्तर :- रखना चाहिए नहीं; ऐसा होता है। यह सच्चा मार्ग हो; जहाँ तक पूर्ण वीतराग न हो, तब ऐसा विकल्प का भाव उपचार से वहाँ होता है। होता है, वीतराग नहीं हुआ, वहाँ तक ऐसा होता है। केवल (केवलज्ञान) हुआ तो उसे विकल्प नहीं होता, वह व्यवहार नहीं होता। समझ में आया ? परन्तु जहाँ निश्चय भान हुआ है, वहाँ ऐसे विकल्प को व्यवहार और उपचार कहा जाता है। अद्भुत बात, भाई !

निश्चयमोक्षमार्ग अकेला ही एक मोक्ष का कारण है। यह जो व्यवहार कहा है, वह बन्ध का कारण है, परन्तु उसे ऐसा ही अनुकूलपना - देव-गुरु; सच्चे अरिहन्त देव-गुरु, केवली परमात्मा, सच्चे निर्ग्रन्थ मुनि या सच्चे शास्त्र या सच्चा अहिंसाधर्म होता है। अहिंसा अर्थात् राग की उत्पत्ति नहीं होना, वह आत्मा का धर्म। ऐसा जो विकल्प-शुभराग है, वह है तो बन्धा का कारण। परन्तु जब यहाँ पर आत्मा के अवलम्बन से मोक्षमार्ग प्रकट हुआ, उसके निमित्त से उसे (बन्धाभाव को) मोक्षमार्ग का आरोप दिया जाता है। 'नहीं है' - उसे कहना, इसका नाम व्यवहार कहा जाता है। 'है' उसे ऐसा जानना और कहना, उसे निश्चय और सत्यार्थ कहा जाता है। कहो, इसमें समझ में आया ? देखो न ! कितनी बात की है !

'**जो सत्यारथरुप सो निश्चय...**' है न ? '**कारण सो व्यवहारो।**' कारण अर्थात् कि इस (सच्चे) कारण से यह दूसरा कारण है। यह कारण जो है, वह तो (सत्य है)। किसका कारण ? मोक्ष के मार्ग की बात है। मोक्ष का मार्ग, तो मार्ग तो कारण हो गया। वह एक कारण है कि शुद्ध भगवान आत्मा की वीतरागी अन्तर दृष्टि होना, उसका-आत्मा का ज्ञान होना, आत्मा में लीनता (होना), वह मोक्ष का मार्ग है। मार्ग अर्थात् कारण। वह कारण उपादानकारण हुआ। तब साथ में विकल्प उत्पन्न हुआ है - सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, नव तत्त्व की श्रद्धा आदि, पंच महाव्रत के परिणाम आदि, शास्त्र का ज्ञान आदि, उसे निमित्तकारण कहते हैं। भाई ! यह पुस्तक तो साधारण हिन्दी भाषा में है। इसमें यह सब अर्थ भरे हैं। ये सब दिगम्बर बहुत वर्षों से पढ़ते थे, परन्तु उन्हें कहीं (अर्थ का पता नहीं था)।

निमित्तकारण - निश्चयमोक्षमार्ग का उपचार कारण, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा जाता है। इसे पहले उन्हें भलीभाँति जानना और निर्णय करना चाहिए। इसका विशेष भाव आयेगा।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)